2 संरचनात्मक श्रेणी
(Structural Functionalism)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

2.1 परिचय (Introduction)

2.2 जाति-व्यवस्था और सैद्धान्तिक निरूपण के प्रयास (Caste System and Efforts of Theoretical Formulations)

2.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सैद्धान्तिक उपागम (Structural Functional Theoritical Approach)

2.4 जाति एवं परिस्थिति गतिशीलता (Caste and Status Mobility)

2.5 संस्कृतिकरण की अवधारणा (The Concept of Sanskritization)

2.6 संस्कृतिकरण के प्रोत्साहन के कारक (Factors Promoting Sanskritization)

2.7 पश्चिमीकरण की अवधारणा (The Concept of Westernization)

2.8 विद्वानों द्वारा अवधारणाओं का समर्थन (Scholar's support to the concept)

2.9 सारांश (Summary)

2.10 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

2.11 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

Scanned with CamScanner

वाक्य होते हैं। मर्टन कहते हैं कि सिद्धान्त का सबसे ऊँचा स्तर, समाज का सामान्य सिद्धान्त (General theory of Society) होता है। सिद्धान्त का सबसे नीचा स्तर अवधारणाएँ होती हैं और अवधारणाओं तथा सामान्य सिद्धान्त के बीच में मध्य स्तरीय (Middle Range Theory) होते सिद्धांत हैं । अत: जब हम भारतीय समाजशास्त्र में सिद्धान्त पर विचार करते हैं तो हमें सिद्धान्त के स्तरों की बात करनी चाहिए।

प्रथम पीढ़ी के समाजशास्त्रियों की मोटी दृष्टि यह थी कि सिद्धान्त निर्माण का कार्य एक प्रकार की विलासिता है, लफ्फाजी से अधिक कुछ नहीं, जिसे आराम कुर्सी पर बैठकर मजे के साथ लिखा जा सकता है। सिद्धान्त निर्माण का कार्य तो छुट्टी की घड़ियों में करने का है। जब देश उपनिवेशवाद और सामन्तवाद के शोषण के जुए के नीचे सिसक रहा हो, समाजशास्त्री इस तरह के विलासिता के कार्य कैसे कर सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद यही सामाजिक अनुकूलन चलता रहा। पाँचवें और छठे दशक में ग्रामीण अध्ययन हुए और उधर यूरोप तथा अमेरिका में सम्पूर्ण समाजशास्त्रियों के समुदाय में एक संकटकालीन स्थिति पैदा हुई। इस संकटकालीन स्थिति से न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में ऐसा लगने लगा कि इस संकट से उबरने का एक बहुत बड़ा साधन सिद्धान्त निर्माण है। यदि सिद्धान्त बन जाऐंगे तो समाज वैज्ञानिक तीसरी दुनिया और उन्नत दुनिया के आयोजन का मार्ग प्रशस्त कर देंगे।

सन् 1950 और 60 की अवधि में बड़े परिवर्तन हुए। वैसे यूरोप और अमेरिका में दूसरे विश्वयुद्ध के बाद खाद्यान्नों का संकट आया। इन देशों ने गाँवों का अध्ययन पूरी संवेदनशीलता के साथ करने की आवश्यकता को महसूस किया गया । इस समझ ने इन देशों के समाजशास्त्रियों और- विशेषकर सामाजिक मानवशास्त्रियों को ग्रामीण अध्ययन की ओर आकर्षित किया। इधर हमारे देश में भारत-चीन युद्ध के उपरान्त खाद्यान्नों में कमी आई। भारत और संसार के बाजारों में मंदी आ गई । दुनिया भर में एक नए प्रकार का सामाजिक अनुकूलन उत्पन्न हो गया। इस स्थिति ने सिद्धान्त निर्माण के प्रति संवेदनशीलता पैदा की। मानवशास्त्रियों ने मार्क्सवादी भाषा में लिखना आरम्भ कर दिया। इस अवधि में मार्क्सवादी सैद्धान्तिक पेराडीम बने और इनकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई। हमारे देश में यह समझा जाने लगा कि अल्पसमूहों और कमजोर वर्गों की त्रासदी का संवेदनशीलता से अध्ययन किया जाना चाहिए। समाजशास्त्र के साहित्य निर्माण में ग्रामीण विकास को केन्द्रिय स्थान दिया जाने लगा।

2.1 परिचय (Introduction)

छठे दशक में भारतीय और विदेशी समाजशास्त्रियों के कतिपय अवधारणाओं का निरूपण किया गया जिनका सरोकार गांवों के अध्ययन से था। **श्यामाचरण दूबे** ने 1955 में ''इण्डियन विलेज'' (Indian Village) पुस्तक को प्रस्तुत किया। इसी वर्ष मैकिम मेरियट द्वारा सम्पादित ''विलेज इण्डिया'' (Village India-1955) प्रकाशित हुई। पांच वर्ष बाद श्रीनिवास द्वारा सम्पादित इंडियाज विलेजेज (India's Villages) आई। यद्यपि ये अध्ययन ग्रामीण अध्ययनों में मील के पत्थर हैं, फिर भी इनकी प्रकृति इथनोग्राफिक और विवरणात्मक है। न तो इन अध्ययनों में प्रकार्यवादी भाषा है और न इनमें मार्क्स का

Scanned with CamScanner

सैद्धान्तिक निरूपण है। इनकी बहुत बड़ी उपयोगिता यही है कि इनके लेखकों ने भविष्य के समाजशास्त्रियों के लिए बहुत बढ़िया इथनोग्राफिक अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की है।

छठे दशक में कुछ ऐसे ग्रामीण अध्ययन आए जिनमें हमें अवधारणात्मक और सैद्धान्तिक निरूपण मिलता है। इस दशक के अध्ययनों से ही हमारे देश में सिद्धान्त निर्माण का कार्य पूरी संवेदनशीलता के साथ प्रारम्भ हुआ। ग्रामीण जीवन के इन अध्ययनकर्त्ताओं ने सैद्धान्तिक भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने कुछ ऐसी ज्ञान की विधाओं को बनाया है, जिन्हें ग्रामीण स्तर पर लागू किया जा सकता है। इन समाजशास्त्रियों ने जहाँ अपनी पहली पीढ़ी के विचारकों की तरह गहन क्षेत्रीय कार्य (Intensive Field Work) किया है, वहीं उन्होंने मार्क्सवादी और गैर-मार्क्सवादी अवधारणाओं को बनाया है।

ग्रामीण अध्ययनों ने कुछ नयी अवधारणाएं रखीं। श्रीनिवास ने अपने कुर्ग के अध्ययन में ''संस्कृतिकरण'' को अवधारणा को रखा। यह वह प्रक्रिया है, जिसमें निम्न जातियों में होनेवाले परिवर्तन को सम्पूर्ण जाति-व्यवस्था के सन्दर्भ में रखा गया है। यह अवधारणा सांस्कृतिक गतिशीलता को स्पष्ट करती है। एक अन्य प्रक्रिया, जिसे श्रीनिवास ने रखा है- वह है पाश्चात्यीकरण। यह बहुत सरल अवधारणा है। श्रीनिवास कहते हैं कि ब्रिटिश राज्य के 150 वर्षों में भारतीय समाज एवं संस्कृति में जो परिवर्तन आए, वे पाश्चात्यीकरण है, वहीं सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एवं शैक्षणिक परिवर्तन भी हैं। इसी प्रक्रिया द्वारा देश में राष्ट्रीय विकास हुआ और नयी राजनैतिक संस्कृति एवं नेतृत्व हमारे सामने आया।

ग्रामीण अध्ययनों में एक और निरूपण लघु एवं महान परम्पराओं Little and Great traditions का है। पांचवें दशक में राबर्ड रेडफिल्ड ने मेक्सिको के गांवों के अध्ययन के दौरान इन दो अवधारणाओं को बनाया था। इन अवधारणाओं से प्रेरित होकर मिल्टन सिंगर और मैकिम मेरियट ने भारत के गांवों में होने वाले सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन में इनको लागू किया। इस सन्दर्भ में वे सभ्यता तथा परम्परा के सामाजिक संगठन (Social Organisation of Traidition) से संबंधित बुनियादी विचारों का सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में विश्लेषण करते हैं। उनका कहना है कि लघु परम्परा ग्रामीण तथा लोक समुदायों पर लागू होती है। दूसरी ओर महान परम्परा अभिजात तथा विशिष्ट लोगों पर लागू होती है। इन दोनों प्रक्रियाओं में अर्थात् इन दो प्रकार के समुदायों में बराबर अन्तःक्रिया होती रहती है। मिल्टन सिंगर ने इन दो अवधारणाओं द्वारा भारत में होने वाले सामाजिक परिवर्तन पर कुछ निरूपण दिए हैं।

श्यामाचरण दुबे ने बहुपरम्परा (Multiple Traditions) की अवधारणा को रखा है। उनका तर्क है कि भारतीय समाज या संस्कृति का विवरण परस्पर विरोधी संस्कृतिकरण व पाश्चात्यीकरण या लघु और महान परम्परा के माध्यम से नहीं दिया जा सकता। भारतीय परम्परा बहुत जटिल है और इन परम्पराओं के सोपान बने हुए हैं। बहुपरम्परा की अवधारणा में परम्पराओं के सोपान का विश्लेषण होना चाहिए। दूबे ने परम्पराओं के सोपान का छः श्रेणियों में विभाजन किया है।

ग्रामीण अध्ययन के क्षेत्र में जो अवधारणात्मक निरूपण हुए हैं, उन्हें महत्वपूर्ण कहा जाना चाहिए। जहाँ हम गांवों को छोटे-छोटे गणराज्यों की तरह समझते थे, वहाँ आज शहरों के साथ जुड़ा हुआ या नेक्सस (Nexus) कहते हैं। अब गाँव मुख्य सभ्यता से अलग नहीं है। सामाजिक परिवर्तन का जो अवधारणात्मक

Scanned with CamScanner

निरूपण ग्रामीण अध्ययनों में हमें मिला है, वह न केवल सिद्धान्त निर्माण के क्षेत्र में वरन् योजनाओं के अमल में भी लाभदायक है।

2.2 जाति-व्यवस्था और सैद्धान्तिक निरूपण के प्रयास (Caste System and Efforts of Theoretical Formulation)

पिछले चार दशकों में सिद्धान्त निर्माण का एक अन्य समाजशास्त्रीय क्षेत्र उभरकर आया है। यह क्षेत्र जाति व्यवस्था के अध्ययन का है। प्रारम्भ में विदेशी एवं देशी समाजशास्त्रियों ने जाति अध्ययन मुख्यतः इथनोग्राफिक (Ethnographic) दृष्टि से किया है। इन अध्ययनों से विभिन्न जातियों की विशेषताओं में पता चलता है । खासियत को बताते हैं। इनमें जाति संरचना की, भारतीय समाज को जोड़ने वाली, एकता बनाए रखने वाली और सामाजिक स्तरीकरण के रूप में व्याख्या नहीं हुई है। योगेन्द्र सिंह ने समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र के एक दशक का ब्यौरा भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली द्वारा प्रायोजित प्रकाशन में दिया है। वे कहते हैं कि स्तरीकरण की अवधारणाओं का निरूपण पांचवें दशक में प्रारम्भ हुआ है। इस दशक में संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागमों द्वारा स्तरीकरण की व्याख्या की जाती थी। छठे दशक में स्तरीकरण की मार्क्सवादी व्याख्या की जाती थी। छठे दशक में स्तरीकरण की मार्क्सवादी व्याख्या आई। ए० आर० देसाई, डेनियल थार्नर और चार्ल्स बेटेनेहेम का मार्क्सीय परिप्रेक्ष्य आया। इधर ड्यूमो और पोकॉक ने स्तरीकरण को संरचनावादी उपागम द्वारा रखा है।

योगेन्द्र सिंह सामाजिक स्तरीकरण पर किए गए सम्पूर्ण साहित्य का ब्यौरा देते हैं। उनका कहना है कि स्तरीकरण के क्षेत्र में सैद्धान्तिक दृष्टि से भारत में मुख्यतया चार उपागम रहे हैं : (1) संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक, (2) संरचनावादी, (3) संरचनात्मक ऐतिहासिक और (4) ऐतिहासिक-भौतिकवादी या मार्क्सवादी।

2.3 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सैद्धान्तिक उपागम (Structural-Functional Theoritical Approach)

जाति पर किए गए अध्ययनों में मुख्य रूप से दो बातें उभरकर सामने आती हैं। पहला, सैद्धान्तिक योगदान यह है कि सभी लेखक जातियों में गतिशीलता देखते हैं। वे यह समझते हैं कि जातियों का एक संरचनात्मक पहलू है, और दूसरा सांस्कृतिक । जाति वर्ग और संरचना दोनो स्वरूपों में काम करती है। दूसरी प्राप्ति यह है कि आज भी उच्च और मध्यम स्तर की जातियां समाज के अन्य स्तरों पर अपना प्रभावी दबाव रखती है। कुछ ऊंची जातियाँ नीचे स्तर पर आ रही हैं उनमें सर्वहारा के लक्षण आ रहे हैं।

श्रीनिवास का कहना है कि जातियों में अब भी उच्चोच्च (पद सोपान) व्यवस्था या स्तरीकरण है। संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण की अवधारणाएँ 1952 में एम० एन० श्रीनिवास द्वारा दक्षिण भारत में कुर्ग लोगों के सामाजिक व धार्मिक जीवन के विश्लेषण में विकसित की गई थीं। 20वीं शताब्दी के मध्य तक जाति का अध्ययन तो वर्ण के आधार पर होता था या फिर वंशानुक्रम तथा अशुद्धता और शुद्धता की धारणाओं के आधार पर प्रस्थिति के अर्थों में होता था। पॉलीन कोलेन्डा (Pavline Kolenda) का कहना

Scanned with CamScanner

है कि जाति और कुछ न होकर, एक स्थानीय सामाजिक संरचना है जिसमें अन्तर्विवाही समूह के सदस्य होते हैं। कोलेन्डा अपने सैद्धान्तिक निरूपण आनुभविक अध्ययन सामग्री के बल पर कहती हैं कि भारतीय जाति व्यवस्था में सावयवी सुदृढ़ता को अतिरंजित रूप में रखा गया है। आज विभिन्न जातियों में जैसे दलितों में आए दिन जो आन्दोलन उठ रहे हैं, प्रतिष्ठा पाने के लिए गतिशीलता आ रही है और नए आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों की विभिन्न जातियों द्वारा जो खोज की जा रही है, वह जाति द्वारा उत्पन्न सवयवी सुदृढ़ता (Organic Solidarity) को नकारती है। कोलेन्डा की सवयवी सुदृढ़ता से परे (Beyond Organic Solidarity) अवधारणा जातीय सैद्धान्तिक निरूपण में बहुत बड़ा योगदान है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सैद्धान्तिक निरूपण में विक्टर, डीसूजा और आन्द्रे बेटेई का योगदान भी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। डीसूजा ने गणितीय-सांख्यिकीय (Mathematical Statistical) मॉडल को लगाकर जाति तथा वर्ग की संरचना के अध्ययन के लिए एक टाइपोलॉजी (Typology) बनायी है। यह टाइपोलॉजी जातियों के संरचनात्मक लक्षणों के अध्ययन में बहुत अधिक उपयोगी है। इसी परम्परा में रामकृष्ण मुखर्जी ने सामाजिक संरचना के संकेतकों (Indicators) के निर्माण के लिए एक मेथडोलॉजी (पद्धति शास्त्रीय) रणनीति बनाई है। इस संरचनात्मक उपागम के अतिरिक्त जातियों के अध्ययन के लिए आन्द्रे नेटेइ ने विश्लेषणात्मक टाइपोलॉजी का निर्माण किया है। इसमें बेटेई जाति, वर्ग एवं शक्ति की टाइपोलॉजीज बनाते हैं। वर्ग के विश्लेपण के लिए भी कुछ सैद्धान्तिक निरूपणों के निर्माण में डिसूजा, बन्दोपाध्याय आदि का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है।

2.4 जाति एवं प्रस्थिति गतिशीलता (Caste and Status Mobility)

श्रीनिवास ने जाति-व्यवस्था का विश्लेषण उर्ध्वमुखी गतिशीलता (upwrd mobility) के अर्थ में किया। उनकी मान्यता थी कि जाति-व्यवस्था इतनी कठोर व्यवस्था नहीं है, जिसमें प्रत्येक जाति की स्थिति सदैव के लिए एक-सी निश्चित हो। गतिशीलता की सम्भावना सदैव रही है। एक निम्न जाति भी एक-दो पीढ़ियों के बाद शाकाहारी बनकर तथा मद्यपान व मादक द्रव्यों के सेवन से दूर रहकर संस्तरण (heirrachy) में उच्च स्थिति प्राप्त कर सकती थी। वह ब्राह्मण के रीति-रिवाज, संस्कार एवं विश्वास अपना लेती थीं तथा कुछ अपनी रीतियों को जिन्हें वह अपवित्र मानती थीं, त्याग देती थीं। एक निम्न जाति द्वारा ब्राह्मणों की जीवन-त्रिधि धारण करना सम्भव प्रतीत होता था यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से इसका निषेध था।

जातियों द्वारा अपनाए गए व्यवसाय, उनका खान-पान एवं उनकी प्रथाओं व रीति-रिवाजों से ही (जाति) संस्तरण में उनकी प्रस्थिति निर्धारित होता है। इस प्रकार, ऐसे व्यवसाय का वरण, जैसे-चमड़ा कमाना, कसाई का काम करना, ताड़ी बनाना आदि जाति को निम्न स्तर पर रख देता है। मांस व मछली आदि का सेवन, कलुषित व अपवित्र करने वाला (defiling) माना जाता है। देवताओं को फल-फूल चढ़ाने की अपेक्षा पशु-बलि निम्न कोटि का प्रचलन माना जाता है। इस प्रकार इन प्रथाओं को मानने वाली तथा इस प्रकार के भोजन करने वाली जातियां ब्राह्मणों के आचरण को धारण कर संस्तरण में उच्च स्थान प्राप्त कर लेती हैं। यह सामाजिक संरचना में एक जाति का उर्ध्वमुखी संचरण (upward mving) है। श्रीनिवास

Scanned with CamScanner

ने इस प्रक्रिया को 'संस्कृतिकरण' कहा है।

2.5 संस्कृतिकरण की अवधारणा (The Concept of Sanskritization)

श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की परिभाषा इस प्रकार की है : ''एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा निम्न जातियाँ उच्च जातियों, विशेषकर ब्राह्मणों के रीति-रिवाजों, संस्कारों, विश्वासों, जीवन-विधि एवं अन्य सांस्कृतिक लक्षणों व प्रणालियों को ग्रहण करती है।'' वास्तव में श्रीनिवास संस्कृतिकरण की परिभाषा का समय-समय पर विस्तार करते रहे हैं। आरम्भ में उन्होंने संस्कृतिकरण के बारे में यह कहा कि-''यह गतिशीलता की वह प्रक्रिया है जिसमें निम्न जातियाँ शाकाहारी एवं मद्यपान निषेधी बनकर एक या दो पीढ़ियों में जाति संस्तरण में ऊपर की ओर अग्रसर होती हैं । बाद में उन्होंने इसे पुनः परिभाषित करते हुए कहा कि ''यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा निम्न जाति, जनजाति या अन्य समूह अपनी प्रथाओं, कर्मकाण्डों (rituals), विचारधाराओं (Ideology) एवं जीवन-विधि (Way to life) को बदल कर द्विज जाति (twice-born caste) की दिशा में अग्रसर होती है। संस्कृतिकरण का यह दूसरा विचार अधिक विस्तृत है क्योंकि श्रीनिवास ने प्रथम परिभाषा में भोजन की आदतों, संस्कारों तथा धार्मिक प्रथाओं के नकल की बात की है, लेकिन बाद में उन्होंने विचारों के नकल की भी बात की है जिसमें धर्म, कर्म, पाप, पुण्य व मोक्ष आदि के विचार भी सम्मिलित हैं।

निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों तथा ब्राह्मणों की प्रथाओं और आदतों की नकल की प्रक्रिया में जब कभी निम्न जातियों के लोग कुछ ऐसे आचरणों को अपनाते हैं, जो वर्तमान विवेकी मानदण्डों के अनुसार अच्छे व प्रकार्यात्मक (Functional) समझे जाते हैं तब वे उन रिवाजों/प्रथाओं को अमान्य मानकर उनके स्थान पर ब्राह्मणों के उन मूल्यों एवं विचारों को ग्रहण करते हैं कि जो कि वर्तमान स्तर के अनुसार अपमानजनक (degrading) एवं विकार्यात्मक (dysfunctional) समझे जाते हैं। श्रीनिवास ने मैसूर के अपने अध्ययन से कुछ उदाहरण दिए हैं। निम्न जातियों की स्त्रियाँ अभिवृत्तियों और विवाह, यौन आदि मामलों में उदार होती हैं। वे तलाक, विधवा विवाह तथा यौन-परिपक्वता के पश्चात् विवाह की अनुमति देती हैं। किन्तु ब्राह्मण यौन-परिपक्वता पूर्व (pre-puberty) विवाह को व्यवहार में लाते हैं, विवाह को अविच्छिन्न (indissoluble) मानते हैं, विधवा पुनर्विवाह को रोकते हैं और विधवा का आभूषण व साज शृंगार व अच्छे वस्त्र पहनने से रोकते हैं तथा सिर मुंडवाने की सिफारिश करते हैं। वे बंधुओं में कुंआरापन (virginity) पत्नियों में शुचिता/विशुद्धता (chastity), तथा विधवाओं में संयम और आत्म-नियंत्रण के पक्षधर हैं। लेकिन निम्नजाति जैसे-जैसे संस्तरण में उठती है और इसके तरीके अधिक संस्कृतिकृत होते जाते हैं, वह यौन और विवाह विषयों पर ब्राह्मण के आचरण ग्रहण करने लगती हैं। संस्कृतिकरण का परिणाम स्त्रियों के प्रति कठोरता का व्यवहार होता है। अयुक्तिसंगत (irrational) आचरण अपनाने का एक और उदाहरण यह हैकि एक ब्राह्मण और उच्च जातीय हिन्दू पत्नी को आदिष्ट (enjoined) किया जाता है कि वह अपने पति को देवता माने। पत्नी से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने पति के भोजन करने के बाद भोजन करे, अपने पति की लम्बी आयु के लिए अनेक व्रत धारण करे, पुत्र-प्राप्ति को धार्मिक आवश्यकता माने इत्यादि। संस्कृतिकरण में निम्न जातियों द्वारा इन्हीं विश्वासों व आचरणों/रीतियों को अपनाना आता है।

Scanned with CamScanner

अत: ये उदाहरण इंगित करते हैं कि संस्कृतिकरण केवल उच्च जातियों, विशेषकर ब्राह्मणों की प्रथाओं, रीतियों, आदतों, मूल्यों का अंधा व अविवेकी नकल करना है। क्या असंस्कृतिकरण की प्रक्रिया की संभव है ? श्रीनिवास का मानना है कि "यह अकल्पनीय नहीं है कि नकल करने वाली जातयों का असंस्कृतिकरण भी कभी-कभी हो सकता है।"

2.6 संस्कृतिकरण के प्रोत्साहन के कारक (Factors Promoting Sankritization)

संस्कृतिकरण को सम्भव बनाने वाले कारक हैं : औद्योगिकरण, व्यवसायिक गतिशीलता, विकसित संचार व्यवस्था, साक्षरता का प्रसार तथा पश्चिमी प्रौद्योगिकी। इसमें आश्चर्य नहीं कि संस्कृत धार्मिक विचारों का विस्तार ब्रिटिश शासन काल में हुआ। संचार साधनों के विकास के साथ संस्कृतिकरण उन क्षेत्रों में चला गया जो पहले अगम्य (inaccessible) थे और साक्षरता के विस्तार ने इस प्रक्रिया को जाति संस्करण में निम्न जातियों तक को आभास करा दिया। श्रीनिवास ने एक विशिष्ट कारक का उल्लेख किया है जिस ने निम्न जातियों में संस्कृतिकरण को फैलाने में सहायता की है। यह (कारक) है कर्मकाण्डी (ritual) क्रियाओं से मंत्रोच्चारण की पृथकता जिसके कारण ब्राह्मणों के संस्कार सभी हिन्दू जातियों और अस्पृश्यों को भी सुलभ हो गए। ब्राह्मणों द्वारा जो गैर-द्विज (non-twiceborn) जातियों पर प्रतिबन्ध लगाए गए थे, उन्होंने केवल वैदिक मंत्रोच्चारण पर पाबन्दी लगायी थी। इस प्रकार निम्न जाति के लोग भी ब्राह्मणों के सामाजिक आचार-विचार को सरलता से अपना सके। इससे संस्कृतिकरण और भी व्यावहारिक बन गया। श्रीनिवास के अनुसार, संसदीय प्रजातंत्र की राजनीतिक संस्था ने भी संस्कृतिकरण की वृद्धि को बढ़ावा दिया है। भारत के संविधान में, मद्यनिषेध, जो कि एक सांस्कृतिक मूल्य है, वर्णित है। कुछ राज्यों ने इसे पूर्ण या आंशिक रूप से लागू भी किया है।

2.7 पश्चिमीकरण की अवधारणा (The Concept of Westerization)

इस अवधारणा का सन्दर्भ गैर-पश्चिमी समाज की प्रौद्योगिकी, संस्थाओं, विचारधाराओं व मूल्यों में परिवर्तन से है जो लम्बे समय तक पश्चिमी समाज के सांस्कृतिक सम्पर्कों का फल है। (श्रीनिवास) भारतीय समाज की उदाहरण देते हुए, तकनीकी परिवर्तन, शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता का उदय एवं नई राजनीतिक संस्कृति आदि का पश्चिमीकरण भारत में दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन का ही प्रतिफल कहा जा सकता है।

पश्चिमीकरण के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं: (1) तकनीकीकरण तथा युक्तिवाद (rationalism) पर बल (2) इस (पश्चिमीकरण) प्रक्रिया पर संस्कृतिकरण का प्रतिकूल प्रभाव नहीं है बल्कि कुछ सीमा तक यह इसको प्रोत्साहित करती है। श्रीनिवास ने पहले कहा था कि संस्कृतिकरण पश्चिमीकरण की भूमिका है। परन्तु बाद में उन्होंने अपना यह विचार बदला और कहा कि यह आवश्यक नहीं है कि पश्चिमीकरण के पूर्व संस्कृतिकरण आए। लेकिन दोनों प्रक्रियाएँ एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। एक को दूसरे

Scanned with CamScanner

तक पहुँची हैं और या वे राजकीय आदेश से या शक्ति हड़प कर प्रबल जातियाँ बन गई हैं।

(3) 'संस्कृतिकरण' तथा 'पश्चिमीकरण' की अवधारणाएं सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण मुख्यत: संस्कृति के सन्दर्भ में करती हैं न कि संरचना के सन्दर्भ में। संस्कृतिकरण जाति व्यवस्था में केवल 'स्थिति परिवर्तन' प्रकट है तथा वह संरचनात्मक परिवर्तन इंगित नहीं करता।

(4) जेटरबर्ग इस विचार के हैं कि श्रीनिवास की दोनों अवधारणाएं 'सत्य की दावा करने वाली (truth asserting) हैं। श्रीनिवास ने स्वयं कहा है कि 'संस्कृतिकरण एक अत्यन्त जटिल तथा विषमरूपी (heterogeneous) अवधारणा है। इसको एक अवधारणा के रूप में समझने की अपेक्षा अवधारणाओं के एक बन्डल के रूप में समझना लाभदायक होगा। यह विस्तृत सांस्कृतिक प्रक्रिया का केवल एक नाम है।

(5) श्रीनिवास का मॉडल केवल भारत में सामाजिक परिवर्तन को समझाता है जो कि जाति-व्यवस्था पर आधारित है। अन्य समाजों के लिए यह उपयोगी नहीं है।

(6) ये अवधारणाएँ सांस्कृतिक परिवर्तन के किसी सिद्धान्त की स्थापना नहीं करतीं, यहाँ तक कि ये दोनों अवधारणाएँ उपयुक्त या अनुपयुक्त, प्रभावशाली या मूलहीन तो हो सकती हैं, परन्तु सही या गलत कभी नहीं हो सकतीं।

(7) हार्पर भी इस अवधारणा को एक प्रकार्यात्मक अवधारणा मानते हैं जो कि परिवर्तन की ऐतिहासिक अवधारणा से विल्कुल मुक्त है।

(8) योगेन्द्र सिंह की मान्यता है कि संस्कृतिकरण अतीत तथा वर्तमान में हुए भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन के अनेक पक्षों का विवरण नहीं देता, क्योंकि यह गैर-सांस्कृतिक परम्पराओं की उपेक्षा करता है, जो कि सांस्कृतिक परम्पराओं का स्थानीय स्वरूप है। मेकिम मेरियट ने भी भारत के एक ग्रामीण समुदाय के अपने अध्ययन में यही पाया।

(9) देश के कुछ भागों में (जैसे पंजाब तथा देश विभाजन से पहले का सिन्ध, जातियों द्वारा जो कुछ भी नकल किया जाता था, वह सांस्कृतिक परम्पराएँ नहीं थीं बल्कि इस्लामी परम्पराएँ थीं। पंजाब में सिख धर्म उदय हिन्दू परम्पराओं और सूफीवाद व रहस्यवाद के संश्लेषणों का प्रतिफल है।

उपरोक्त विवेचन यह प्रकट करता है कि श्रीनिवास के द्वारा विकसित की गई दोनों अवधारणाएं भारत के सम्पूर्ण परिवर्तन का नहीं अपितु मात्र सीमित परिवर्तन का संकेत देती हैं।

2.10 अभ्यास के प्रश्न (Questions for exercise)

1. भारतीय समाजशास्त्रियों की दृष्टि में संरचनात्मक प्रकार्यवाद के औचित्य को बताएँ।
2. पाँचवें और छठे दशक में ग्रामीण अध्ययन सिद्धान्त निर्माण में किस प्रकार सहायक सिद्ध हुए?

Scanned with CamScanner